

चञ्चत्सुवर्णगिरिराजसुनिश्चलास्ते प्रध्वस्तकर्ममलसंगतयो मुनीन्द्राः।
देवेन्द्रदानवनरेन्द्रसमर्चनीया नित्यं भवन्तु भवशान्तिविधायिनो मे ॥१२॥
इति कथाकोशे पञ्चशतमुनीनामाख्यानं समाप्तम्।

७३. चाणक्याख्यानम्

नत्वा नमत्सुराधीशैः समर्चितपदद्वयम्। श्रीजिनेन्द्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्यस्य कथानकम् ॥१॥
पुरे पाटलिपुत्राख्ये नन्दो राजा बभूव च। मंत्रिणोस्य त्रयः काविः सुबन्धुः शकटालवाक् ॥२॥
पुरोधा कपिलस्तस्य देविला प्राणवल्लभा। तयोश्चाणक्यनामाभूत्युत्रो वेदविचक्षणः ॥३॥
एकदा काविमन्त्री च नन्दं प्राह महीपते। प्रत्यन्तवासिनो भूपाः समायातास्तवोपरि ॥४॥
राजा जगाद भो मन्त्रिन्द्रव्यं दत्त्वा मदोद्धतान्। शत्रून्निवारय प्रौढां-स्तच्छ्रुत्वा तेन मन्त्रिणा ॥५॥
द्रव्यं दत्त्वा यथायोग्यं शत्रवस्ते निवारिताः। विना मन्त्रिजनैर्नैव राज्ञो राज्यस्थितिर्भवेत् ॥६॥
पृष्टे राज्ञैकदा भाण्डा-गारिको धनहेतवे। स च प्राह प्रभो सर्वं शत्रूणां काविराददौ ॥७॥
ततो रुष्टेन नन्देन स काविः सकुटुम्बकः। अन्धकूपे विनिक्षिप्तः संकटद्वारके तथा ॥८॥

दिपते हुए सुमेरु के समान स्थिर, कर्मरूपी मैल को, जो कि आत्मा को मलिन करने वाला हैं, नाश करने वाले और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजाओं और महाराजाओं द्वारा पूजा किए गए जिन मुनिराजों ने संसार का नाश कर मोक्ष लाभ किया वे मेरा भी संसार-भ्रमण मिटावें ॥१२॥

७३. चाणक्य की कथा

देवों द्वारा पूजा किए जाने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर चाणक्य की कथा लिखी जाती है ॥१॥

पाटलिपुत्र या पटना के राजा नन्द के तीन मंत्री थे। कावी, सुबन्धु और शकटाल ये उनके नाम थे। यहीं एक कपिल नाम का पुरोहित रहता था। कपिल की स्त्री का नाम देविला था। चाणक्य इन्हीं का पुत्र था। यह बड़ा बुद्धिमान् और वेदों का ज्ञाता था ॥२-३॥

एक बार आस-पास छोटे-मोटे राजाओं ने मिलकर पटना पर चढ़ाई कर दी। कावी मंत्री ने इस चढ़ाई का हाल नन्द से कहा। नन्द ने घबरा कर मंत्री से कह दिया कि जाओ जैसे बने उन अभिमानियों को समझा-बुझाकर वापस लौटा दो। धन देना पड़े तो वह भी दो। राजाज्ञा पा मंत्री ने उन्हें धन वगैरह देकर लौटा दिया। सच है, बिना मंत्री के राज्य स्थिर हो ही नहीं सकता ॥४-६॥

एक दिन नन्द को स्वयं कुछ धन की जरूरत पड़ी। उसने खजांची से खजाने में कितना धन मौजूद है, इसके लिए पूछा। खजांची ने कहा-महाराज, धन तो सब मंत्री महाशय ने दुश्मनों को दे डाला। खजाने में तो अब नाम मात्र के लिए थोड़ा-बहुत धन बचा होगा। यद्यपि दुश्मनों को धन स्वयं राजा ने दिलवाया था और इसलिए गलती उसी की थी, पर उस समय अपनी यह भूल उसे न दीख

तत्रैकैकं तदा भक्तसरावं दिवसं प्रति। दीयते स्तोकपानीयं हा मित्रं कस्य भूपतिः ॥९॥
 कुटुम्बं कविना प्रोक्तं सकुटुम्बस्य भूभुजः। यो मारणे क्षमः सोत्र गृह्णात्वेतच्च भोजनम् ॥१०॥
 परिवारस्तदा प्राह त्वमेवं सुभटस्तराम्। स काविस्तुः ततः कूपे बिलं कृत्वा निजोचितम् ॥११॥
 कुर्वाणो भोजनं तत्र त्रीणि वर्षाणि संस्थितः। कुटुम्बं च मृतं सर्वं कूपस्थं पापकर्मणा ॥१२॥
 प्रत्यन्तवासिनां क्षोभे स्मृत्वा नन्देन कूपतः। काविमन्त्री स निस्सार्य पुनर्मन्त्रिपदे धृतः ॥१३॥
 ततोसौ नन्दभूभर्तुर्वशनाशाय वह्निवत्। नरं गवेषयन्नित्यं काविर्मन्त्री दुराशयः ॥१४॥
 अटव्यामेकदा वीक्ष्य खनन्तं दर्भसूचिकाम्। तं चाणक्यं प्रति प्राह किमर्थं खन्यते त्वया ॥१५॥
 चाणक्येन ततः प्रोक्तं विद्धोहमनयेति च। काविस्तु पूर्यतेऽवोचत्क्षमां कुरु महामते ॥१६॥

पड़ी और दूसरे के उकसाने में आकर उसने बेचारे निर्दोष मंत्री को और साथ में उसके सारे कुटुम्ब को एक अन्धे कुँए में डलवा दिया। मंत्री तथा उसका कुटुम्ब वहाँ बड़ा कष्ट पाने लगा। उनके खाने-पीने के लिए बहुत थोड़ा भोजन और थोड़ा सा पानी दिया जाता था। वह इतना थोड़ा था कि एक मनुष्य भी उससे अच्छी तरह पेट न भर सकता था। सच है, राजा किसी का मित्र नहीं होता। राजा के इस अन्याय ने कावी के मन में प्रतिहिंसा की आग धधका दी। इस आग ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। कावी ने तब अपने कुटुम्ब के लोगों से कहा—जो भोजन इस समय हमें मिलता है उसे यदि हम इसी तरह थोड़ा थोड़ा सब मिलकर खाया करेंगे तब तो हम धीरे-धीरे सब ही मर मिटेंगे और ऐसी दशा में कोई राजा से उसके इस अन्याय का बदला लेने वाला न रहेगा। पर मुझे यह सह्य नहीं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई कुटुम्ब का मनुष्य राजा से बदला ले। तब ही मुझे शान्ति मिलेगी। इसलिए इस भोजन को वही मनुष्य अपने में से खाये जो बदला लेने की हिम्मत रखता हो। तब उसके कुटुम्बियों ने कहा—इसका बदला लेने में आप ही समर्थ देख पड़ते हैं। इसलिए हम खुशी के साथ कहते हैं कि इस भार को आप ही अपने सर पर लें। उस दिन से उसका सारा कुटुम्ब भूखा रहने लगा और धीरे-धीरे सबका सब मर मिटा। इधर कावी अपने रहने योग्य एक छोटा सा गड्ढा उस कुँए में बनाकर दिन काटने लगा। ऐसे रहते उसे कोई तीन वर्ष बीत गए ॥७-१२॥

जब यह खबर आस-पास के राजाओं के पास पहुँची तब उन्होंने उस समय राज्य को अव्यवस्थित देख फिर चढ़ाई कर दी। अब तो नन्द के कुछ होश ढीले पड़े, अकल ठिकाने आई अब उसे न सूझ पड़ा कि वह क्या करे? तब उसे अपने मंत्री कावी की याद आयी। उसने नौकरों को आज्ञा दो कुँए से मंत्री को निकलवाया और मंत्री की जगह नियत किया। मंत्री ने भी इस समय तो उन राजाओं से सुलह कर नन्द की रक्षा कर ली। पर अब उसे अपना वैर निकालने की चिन्ता हुई वह किसी ऐसे मनुष्य को खोज करने लगा, जिससे उसे सहायता मिल सके। एक दिन कावी किसी वन में हवाखोरी के लिए गया हुआ था। इसने वहाँ एक मनुष्य को देखा कि जो काँटों के समान चुभने वाली दूबा को जड़-मूल से उखाड़-उखाड़ कर फेंक रहा था, उसे एक निकम्मा काम करते देखकर कावी ने चकित

किमत्र खननेनोच्चैर्यदा मूलं तथा स्थितम्। किं शत्रोर्मारणेनात्र गृहीतं चेन्न मस्तकम् ॥१७॥
 तद्वाक्यं काविना श्रुत्वा स्वचित्ते चेति चिन्तितम्। अयं नन्दकुलोच्छेदे योग्यो भाति न संशयः ॥१८॥
 चाणक्यस्य प्रिया प्राह यशस्वत्यभिधा ततः। नन्दो राजा ददात्येव कपिलां गोमतल्लिकाम् ॥१९॥
 तां त्वं गृहाण भो नाथ गृह्णाम्येवं च सोवदत्। तं सम्बन्धं समाकर्ण्य स काविस्तु नृपं जगौ ॥२०॥
 दीयते भो नराधीश कपिलानां सहस्रकम्। ब्राह्मणेभ्यो भवद्भिस्तु भूरिवित्तसमन्वितैः ॥२१॥
 अहो दुष्टस्य दुष्टत्वं लक्ष्यते केन भूतले। चित्तं चान्यद्वचश्चान्यत्कायो मायामयो यतः ॥२२॥
 नन्दराजेन संप्रोक्तं ब्राह्मणानानय द्रुतम्। ददामि कपिलास्तेभ्यस्ततोसौ मन्त्रिशत्रुकः ॥२३॥

होकर पूछा-ब्रह्मदेव, इसे खोदने से तुम्हारा क्या मतलब है? क्यों बे-फायदा इतनी तकलीफ उठा रहे हो? इस मनुष्य का नाम चाणक्य था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है। चाणक्य ने तब कहा-वाह महाशय! इसे आप बे-फायदा बतलाते हैं। आप जानते हैं कि इसका क्या अपराध है? सुनिये! इसने मेरा पाँव छेद डाला और मुझे महा कष्ट दिया, तब मैं क्यों इसे छोड़ने चला? मैं तो इसका जड़मूल से नाश कर ही दम लूँगा। यही मेरा संकल्प है। तब कावी ने उसके हृदय की थाह लेने के लिए कि इसकी प्रतिहिंसा की आग कहाँ जाकर ठण्डी पड़ती है, कहा-तो महाशय! अब इस बेचारी को क्षमा कीजिए, बहुत हो चुका। उत्तर में चाणक्य ने कहा-नहीं, तब तक इसके खोदने से लाभ ही क्या जब तक कि इसकी जड़े बाकी रह जायें। उस शत्रु के मारने से क्या लाभ जब कि उसका सिर न काट लिया जाये? चाणक्य की यह ओजस्विता देखकर कावी को बहुत संतोष हुआ। उसे निश्चय हो गया कि इसके द्वारा नन्दकुल का जड़-मूल से नाश हो सकेगा। इससे अपने को बहुत सहायता मिलेगी। अब सूर्य और राहु का योग मिला देना अपना काम है। किसी तरह नन्द के सम्बन्ध में इसका मनमुटाव करा देना ही अपने कार्य का श्रीगणेश हो जाएगा। कावी मंत्री इस तरह का विचार कर ही रहा था कि प्यासे की जल की आशा होने की तरह एक योग मिल ही गया। इसी समय चाणक्य की स्त्री यशस्वती ने आकर चाणक्य से कहा-सुनती हूँ, राजा नन्द ब्राह्मणों को गौ दान किया करते हैं तब आप भी जाकर उनसे गौ लाइये न। चाणक्य ने कहा-अच्छी बात है, मैं अपने महाराज के पास जाकर जरूर गौ लाऊँगा। यशस्वती के मुँह से यह सुनकर कि नन्द गौओं का दान किया करता है, कावी मंत्री खुश होता हुआ राजदरबार में गया और राजा से बोला-महाराज! क्या आज आप गौएँ दान करेंगे? ब्राह्मणों को इकट्ठा करने की योजना की जाए? महाराज, आपको तो यह पुण्यकार्य करना ही चाहिए। धन का ऐसी जगह सदुपयोग होता है। मंत्री ने अपना चक्र चलाया और वह राजा पर चल भी गया। सच है, जिनके मन में कुछ और होता है, जो वचनों से कुछ और बोलते हैं तथा शरीर जिनका माया से सदा लिपटा रहता है, उन दुष्टों की दुष्टता का पता किसी को नहीं लग पाता। कावी की सत् सम्मति सुनकर नन्द ने कहा-अच्छा ब्राह्मणों को आप बुलवाइये, मैं उन्हें गौएँ दान करूँगा। मंत्री जैसा चाहता था, वही हो गया। वह झटपट जाकर

चाणक्यं तं समानीय पुरोहितसुतं मुदा। अग्रासने शुभे काविः स्थापयामास दुष्टधीः ॥२४॥
 चाणक्येन तदा तेन स्वकुंडीभिर्बहूनि च। स्वीकृतान्यासनान्युच्चैर्महातृष्णातुरेण च ॥२५॥
 तं तथास्थितमालोक्य काविः प्राह प्रपञ्चतः। अहो भट्ट नृपो वक्ति भूरिविप्राः समागताः ॥२६॥
 मुञ्चैकमासनं देव मुक्तं तेनैकमासनम्। एवं सर्वासनान्युच्चैर्मोचयित्वा च मंत्रिणा ॥२७॥
 पुनः प्रोक्तं महाभट्ट किं करोम्यहमल्पकः। नन्दो विवेकशून्यात्मा भगत्येवं महीपतिः ॥२८॥
 अग्रासनं त्यज त्वं न दत्तमन्यस्य वर्त्तते। गच्छ त्वं स इति प्रोक्त्वा गले धृत्वा बहिः कृतः ॥२९॥
 चाणक्योसौ ततः कोपाव्रन्दवंशक्षयेच्छया। यो राज्यं नन्दभूपस्य समिच्छति महाभट्टः ॥३०॥
 गृहीतुं स समायातु भणित्वेति विनिर्गतः। एकस्तत्पृष्टतो लग्नस्तं गृहीत्वा प्रवेगतः ॥३१॥
 प्रत्यन्तवासिनां राज्ञां मिलित्वा क्रूरमानसः। घातुकेन समागत्य हत्वा नन्दं महीपतिम् ॥३२॥
 तद्राज्यं च समादाय स्वयं राजा बभूव च। अहो मंत्रिप्रकोपेन भूपाः के न क्षयं गताः ॥३३॥
 दीर्घकालं ततो राज्यं कृत्वा चाणक्यभूपतिः। महीधरमुनेः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य शर्मदम् ॥३४॥

चाणक्य को ले आया और उसे सबसे आगे रखे आसन पर बैठा दिया। लोभी चाणक्य ने तब अपने आस-पास रखे हुए बहुत से आसनों को घर ले जाने की इच्छा से इकट्ठा कर अपने पास रख लिए। उसे इस प्रकार लोभी देखकर कावी ने कपट से कहा-पुरोहित महाराज! राजा साहस कहते हैं और बहुत से ब्राह्मण विद्वान् आए हैं, आप उनके लिए आसन दीजिये। चाणक्य ने तब एक आसन निकाल कर दे दिया। इसी तरह धीरे-धीरे मंत्री ने उससे सब आसन रखवाकर अन्त में कहा-महाराज, क्षमा कीजिए! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो पराया नौकर हूँ। इसलिए जैसा मालिक कहते हैं उनका हुक्म बजाता हूँ पर जान पड़ता है कि राजा बड़ा अविचारी है जो आप सरीखे महा ब्राह्मण का अपमान करना चाहता है। महाराज, राजा का कहना है कि आप जिस अग्रासन पर बैठे हैं उसे छोड़कर चले जाइए। यह आसन दूसरे विद्वान् के लिए पहले ही से दिया जा चुका है। यह कहकर ही कावी ने गर्दन पकड़ चाणक्य को निकाल बाहर कर दिया। चाणक्य एक तो वैसे ही महाक्रोधी और अब उसका ऐसा अपमान किया गया और वह भी भरी राजसभा में! तब तो अब चाणक्य के क्रोध का पूछना ही क्या? वह नन्दवंश को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का दृढ़ संकल्प कर जाता-जाता बोला कि जिसे नन्द का राज्य चाहना हो, वह मेरे पीछे-पीछे चला आवे। यह कहकर वह चलता बना। चाणक्य की इस प्रतिज्ञा के साथ ही कोई एक मनुष्य उसके पीछे हो गया। चाणक्य उसे लेकर उन आस-पास के राजाओं से मिल गया और फिर मौका देख एक घातक मनुष्य को साथ ले वह पटना आया और नन्द को मरवा कर आप उस राज्य का मालिक बन बैठा। सच है, मंत्री के क्रोध से कितने राजाओं का नाम इस पृथ्वी से उठ गया होगा ॥३३-३३॥

इसके बाद चाणक्य ने बहुत दिनों तक राज्य किया। एक दिन उसे श्रीमहीधर मुनि द्वारा जैनधर्म का उपदेश सुनने का मौका मिला। उस उपदेश का उसके चित्त पर खूब असर पड़ा। वह उसी समय सब राज-काज छोड़कर मुनि बन गया। चाणक्य बुद्धिमान् और बड़ा तेजस्वी था।

मुनिर्भूत्वा सुधीः पञ्चशतैः शिष्यैः समन्वितः। कुर्वन्विहारमत्युच्चैर्भव्यान्सम्बोधयन्मुदा ॥३५॥
 दक्षिणापथमागत्य जैनतत्त्वविचक्षणः। वनवासमहादेशे क्रौंचनामपुरे सुधीः ॥३६॥
 तत्र पश्चिमभागस्थे गोष्ठे संन्यासपूर्वकम्। प्रायोपयानमरणे संस्थितो मुनिभिर्युतः ॥३७॥
 यो नन्दस्य सुबन्धुख्यो मंत्री पापपरायणः। नन्दे मृते महाक्रोधं कुधीश्चाणक्यके वहन् ॥३८॥
 सोपि क्रौंचपुरीं प्राप्तः सुमित्राख्यमहीपतेः। पार्श्वे स्थितस्तदा राजा सुमित्रो जिनधर्मभाक् ॥३९॥
 भक्त्या गोष्ठं समागत्य नत्वा तान्मुनिसत्तमान्। अष्टधा सुमहत्पूजां कृत्वा श्रुत्वा गृहं गतः ॥४०॥
 पापी सुबन्धुनामा च मंत्री मिथ्यात्वदूषितः। समीपे तन्मुनीन्द्राणां कारीषाग्निं कुधीर्ददौ ॥४१॥
 तदा ते मुनयो धीराः शुक्लध्यानेन संस्थिताः। हत्वा कर्माणि निःशेषं प्राप्ताः सिद्धिं जगद्धिताम् ॥४२॥
 यत्रानन्तसुखं समस्तजगतां पूज्यं व्यथावर्जितं। रागद्वेषमदप्रमादरहितं संप्राप्य सिद्धालयम् ॥
 सर्वे ते मुनयो विशुद्धचरणास्तिष्ठन्ति ये नित्यशः। कुर्युर्मेऽपि सुखं विमुक्तिजनितं बोधाब्धयो निर्मलम् ॥४३॥

इति कथाकोशे चाणक्यमुनेराख्यानं समाप्तम्।

इसलिए थोड़े ही दिनों बाद उसे आचार्य पद मिल गया। वहाँ से कोई पाँच सौ शिष्यों को साथ लिए उसने बिहार किया। रास्ते में पड़ने वाले देशों, नगरों और गाँवों में धर्मोपदेश करता और अनेक भव्य-जनों को हितमार्ग में लगाता वह दक्षिण की ओर बसे हुए वनवास देश के क्रौंचपुर में आया। इस पुर के पश्चिम किनारे कोई अच्छी जगह देख इसने संघ ठहरा दिया। चाणक्य को यहाँ यह मालूम हो गया कि उसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। इसलिए उसने वहीं प्रायोगपगमन संन्यास ले लिया ॥३४-३७॥

नन्द का दूसरा मंत्री सुबन्धु था। चाणक्य ने जब नन्द को मरवा डाला तब उसके क्रोध का पार नहीं रहा। प्रतिहिंसा की आग उसके हृदय में दिन-रात जलने लगी। पर उस समय उसके पास कोई साधन बदला लेने का न था। इसलिए वह लाचार चुप रहा। नन्द की मृत्यु के बाद वह इसी क्रौंचपुर में आकर यहाँ के राजा सुमित्र का मंत्री हो गया। राजा ने जब मुनिसंघ के आने का समाचार सुना तो वह उसकी वन्दना-पूजा के लिए आया, बड़ी भक्ति से उसने सब मुनियों की पूजा कर उनसे धर्मोपदेश सुना और बाद उनकी स्तुति कर वह अपने महल में लौट आया। मिथ्यात्वी सुबन्धु को चाणक्य से बदला लेने का अब अच्छा मौका मिल गया। उसने उस मुनिसंघ के चारों ओर खूब घास इकट्ठा करवा कर उसमें आग लगवा दी। मुनि संघ पर हृदय को हिला देने वाला बड़ा ही भयंकर दुःसह उपसर्ग हुआ सही, पर उसने उसे बड़ी सहन-शीलता के साथ सह लिया और अन्त में अपनी शुक्लध्यानरूपी आत्मशक्ति से कर्मों का नाश कर सिद्धगति लाभ की। जहाँ राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, दुःख, चिन्ता आदि दोष नहीं हैं और सारा संसार जिसे सबसे श्रेष्ठ समझता है ॥३८-४२॥

चाणक्य आदि निर्मल चारित्र के धारक ये सब मुनि अब सिद्धगति में ही सदा रहेंगे। ज्ञान के समुद्र ये मुनिराज मुझे भी सिद्धगति का सुख दें ॥४३॥

७४. वृषभसेनस्याख्यानम्

श्रीजिनं भारतीं नत्वा श्रुताब्धिं मुनिसत्तमम्। वक्ष्ये वृषभसेनस्य चरित्रं भुवनोत्तमम् ॥१॥
 दक्षिणादिपथे ख्याते कुणालनगरे वरे। राजा वैश्रवणो धीमान्सद्दृष्टिर्जिनभक्तिभाक् ॥२॥
 रिष्टामात्योभवन्मन्त्री पापी मिथ्यात्वमोहितः। युक्तं चन्दनवृक्षस्य पार्श्वे दुष्टोहिको भवेत् ॥३॥
 एकदा भूरिसंघेन मण्डितो मुनिनायकः। सुधीर्वृषभसेनाख्यस्तत्रायातो जगद्धितः ॥४॥
 श्रुत्वा वैश्रवणो भूपो मुनीनामागमं शुभम्। लसद्विभूतिसंयुक्तो भक्तिमाञ्जुद्धमानसः ॥५॥
 सार्द्धं सद्भव्यसन्दोहैः समागत्य मुनीश्वरान्। त्रिः परीत्य महाप्रीत्या नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥६॥
 समभ्यर्च्य जलाद्यैश्च स्तुत्वा स्तोत्रैः सुखप्रदैः। धर्मं श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं प्रीतो राजा जगद्धितम् ॥७॥
 जैनधर्मं जगत्सारं सम्पदाशर्मदायकम्। समाकर्ण्य सुखी न स्यात्को वा चेद्भाविसद्गतिः ॥८॥
 रिष्टामात्यस्तदा मन्त्री वादं कृत्वा मदोद्धतः। मानभङ्गं तरां प्राप्तो मुनीन्द्रवचनोत्करैः ॥९॥
 ततो रात्रौ समागत्य प्रच्छन्नं मानभङ्गतः। पापी प्रज्वालयामास वह्निना वसतिं सताम् ॥१०॥

७४. वृषभसेन की कथा

जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और ज्ञान के समुद्र साधुओं को नमस्कार कर वृषभसेन की उत्तम कथा लिखी जाती है ॥१॥

दक्षिण दिशा की ओर बसे हुए कुण्डल नगर के राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे और रिष्टामात्य नाम का इनका मन्त्री इनसे बिल्कुल उल्टा-मिथ्यात्वी और जैनधर्म का बड़ा द्वेषी था। सो ठीक ही है, चन्दन के वृक्षों के आसपास सर्प रहा ही करते हैं ॥२-३॥

एक दिन श्रीवृषभसेन मुनि अपने संघ को साथ लिए कुण्डल नगर की ओर आए। वैश्रवण उनके आने के समाचार सुन बड़ी विभूति के साथ भव्यजनों को संग लिए उनकी वन्दना को गया। भक्ति से उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की, वन्दना की और पवित्र द्रव्यों से पूजा की तथा उनसे जैनधर्म का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सच है, इस सर्वोच्च और सब सुखों के देने वाले जैनधर्म का उपदेश सुनकर कौन सद्गति-का पात्र सुखी न होगा? ॥४-८॥

राजमन्त्री भी मुनिसंघ के पास आया। पर वह इसलिए नहीं कि वह उनकी पूजा-स्तुति करे किन्तु उनसे वाद-शास्त्रार्थ कर उनका मान भंग करने, लोगों की श्रद्धा उन पर से उठा देने। पर यह उसकी भूल थी। कारण, जो दूसरों के लिए कुँआ खोदते हैं उनमें पहले उन्हें ही गिरना पड़ता है। यही हुआ भी। मन्त्री ने मुनियों का अपमान करने की गर्ज से उनसे शास्त्रार्थ किया, पर अपमान भी उसी का हुआ। मुनियों के साथ उसे हार जाना पड़ा। उस अपमान की उसके हृदय पर गहरी चोट लगी। इसका बदला चुकाना निश्चित कर वह शाम को छुपा हुआ मुनिसंघ के पास आया और जिस स्थान में वह ठहरा था उसमें उस पापी ने आग लगा दी। बड़े दुःख की बात है कि दुर्जनों का स्वभाव एक विलक्षण ही तरह का होता है। वे स्वयं तो पहले दूसरों के साथ छेड़-छाड़ करते हैं और जब उन्हें